चित्र-अद्वैतवाद का जैनदृष्टि से तार्किक विश्लेषण

डा० लालचन्द्र जैन

बौद्धदर्शन के विज्ञानवादी दार्शनिक सम्प्रदाय के कुछ दार्शनिक चित्र-अद्वैतवाद के पुरस्कर्ता हैं। चित्राद्वैत का अर्थ है कि जिस तरह चित्र अनेक रंगों से युक्त होता है उसी प्रकार ज्ञान भी अनेक आकार वाला होता है। चित्र-अद्वैतवादी ज्ञान-अद्वैतवाद में विश्वास नहीं करते हैं। उनका सिद्धान्त है कि एकमात्र अनेक आकार वाले चित्र-ज्ञान की ही सत्ता विद्यमान है। विभिन्न रंगों से युक्त चितकबरी गाय की तरह ज्ञान में वस्तु के नील-पीत आदि अनेक आकार होते हैं। विज्ञान-अद्वैतवादी बौद्ध ज्ञान में होने वाले इन नीलादि आकारों को असत्य मानता है और चित्राद्वैतवादी सत्य मानता है यही दोनों में अन्तर है।

इस सिद्धान्त का उल्लेख धर्मकीर्ति, आ० विद्यानन्द, वादिराज, प्रभाचन्द्र, वादिदेवसूरि, यशोविजय आदि ने पूर्वपक्ष के रूप में किया है।[1] उक्त आचार्यों के ग्रंथों में उपलब्ध चित्र-अद्वैत का स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।

चित्राकार ज्ञान की ही सत्ता है :—चित्राद्वैतवादी कहते हैं कि नील, सुख आदि अनेक आकारों से युक्त चित्र-आकार वाला ज्ञान ही एक मात्र तत्त्व है। इसके अलावा अन्य कोई तत्त्व नहीं है। **बाह्य पदार्थ नहीं हैं**—चित्राद्वैतवादी बाह्य पदार्थों के अस्तित्व का निराकरण करता है। इस विषय में उसका कहना है कि कोई भी प्रमाण बाह्य पदार्थों के अस्तित्व को सिद्ध नहीं करता है, इसलिए बाह्य पदार्थों की सत्ता गधे के सींग की तरह नहीं है। यह सभी दार्शनिक मानते हैं कि प्रमेय के अस्तित्व की सिद्धि प्रमाणों से होती है जिसके अस्तित्व को सिद्ध करने वाला प्रमाण नहीं होता है, उसका अस्तित्व भी नहीं होता है। अपने कथन को स्पष्ट करते हुए चित्र-अद्वैतवादी तर्क करते हैं कि यदि बाह्य पदार्थ के अस्तित्व को सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण है तो बाह्य वस्तुवादियों को बतलाना होगा कि वह प्रमाण

---

१. (क) धर्मकीर्ति (६३५-६५० ई०) : प्रमाणवार्तिक, द्वितीय परिच्छेद, कारिका २०८-२३८ पृ० १६३-१७२

(ख) आ० विद्यानन्द (वि० ९ वीं शताब्दी) :
I तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, प्रथम अध्याय, प्रथम आह्निक, कारिका १५५-१६४, पृ० ३५-३६।
II अष्टसहस्री, कारिका ७, पृ० ७६-७९

(ग) वादिराज [वि० ११ वीं शती] : न्यायविनिश्चयविवरण प्रथम प्रस्ताव, कारिका ९३-९४, पृ० ३८३-३८९।

(घ) आ० प्रभाचन्द्र (ई० सन् ९८०-१०६५)
I न्यायकुमुदचन्द्र, १/५, पृ० १२५-१३०; II प्रमेयकमलमार्तण्ड, १।५, पृ० ९५-९६।

(ङ) वादिदेवसूरि [वि० १२ वीं शती] : स्याद्वादरत्नाकर, १/१६, पृ० १७२-१७९

(च) यशोविजय [वि० १८ वीं शती] शास्त्रवार्तासमुच्चय टीका,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साकार है अथवा निराकार ?[१] **निराकार प्रमाण जड़ पदार्थ का साधक नहीं है**—निराकार प्रमाण बाह्य वस्तु की सत्ता को नहीं सिद्ध कर सकता है, क्योंकि वह निराकार प्रमाण सर्वत्र समान रूप रहेगा। इसलिए वह प्रत्येक पदार्थ की व्यवस्था का साधक हेतु नहीं हो सकता है।[२]

साकार-प्रमाण से चित्राकार ज्ञान की सत्ता सिद्ध होती है–अब यदि यह माना जाय कि बाहरी पदार्थों की सत्ता सिद्ध करने वाला प्रमाण आकार वाला है, तो इससे नीलादि अनेक आकारों वाला एक चित्रज्ञान ही सिद्ध होता है। इस चित्र ज्ञान से भिन्न जड़ पदार्थ की सिद्धि इस साकार प्रमाण से भी नहीं होती है, क्योंकि जड़ पदार्थ की व्यवस्था का साधक हेतु कुछ भी नहीं है।

आकार विशिष्ट ज्ञान बाहरी जड़ पदार्थों की व्यवस्था का कारण नहीं है—चित्राद्वैतवादी अपने कथन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आकार विशिष्ट ज्ञान को बाह्य पदार्थों की व्यवस्था का कारण नहीं माना जा सकता है क्योंकि वह अपने आकार के अनुभव मात्र से कृतकृत्य हो जाता है। प्रमाणवार्तिक[३] में धर्मकीर्ति ने कहा भी है "यदि ज्ञान (बुद्धि) नीलादि रूप नहीं है तो बाह्य पदार्थ के होने में क्या कारण (प्रमाण) है और यदि बुद्धि नीलादि रूप है तो बाह्य पदार्थ के होने में क्या प्रयोजन है ?" कहने का तात्पर्य यह है कि यदि बुद्धि (ज्ञान) अनीलादि रूप है तो उसके द्वारा नील आदि बाह्य पदार्थ की सिद्धि कैसे होगी ? क्योंकि उसको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। यदि ज्ञान नील आदि रूप है तो फिर बाह्य पदार्थों के मानने का कोई प्रयोजन नहीं है अर्थात् उन्हें मानना निरर्थक है। क्योंकि नील आदि बाह्य आकार मात्र ज्ञान में पाया जाता है।

पूर्वभावी, उत्तरभावी एवं समकालभावी आकार विशिष्ट ज्ञान बाह्य पदार्थ की व्यवस्था नहीं कर सकता—चित्राद्वैतवादी अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए बाह्य पदार्थों की सत्ता मानने वालों से जानना चाहते हैं कि यदि आकार विशिष्ट ज्ञान पदार्थ की व्यवस्था करता है तो बतलाना होगा कि प्रमेय से पहले उत्पन्न होने वाला ज्ञान बाहरी पदार्थों की व्यवस्था करेगा या उत्तर काल में होने वाला ज्ञान अथवा सहभावी ज्ञान ?[४]

प्रमेय से पहले काल में होने वाले ज्ञान को बाह्य पदार्थों का व्यवस्थापक मानना ठीक नहीं है। क्योंकि यह इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न नहीं होगा। प्रमेय पदार्थों के होने पर ही ज्ञान का सन्निकर्ष हो सकता है, किन्तु प्रमेय से पूर्वभावी ज्ञान की उत्पत्ति प्रमेय के बिना ही होती है। जो ज्ञान प्रमेय के बिना ही उत्पन्न हो जाता है, वह इन्द्रियार्थसन्निकर्ष से उत्पन्न नहीं होता है, जैसे आकाश कमल का ज्ञान इन्द्रियार्थक सन्निकर्षजन्य नहीं होता है, इसी प्रकार बाह्य पदार्थ के व्यवस्थापक के रूप में स्वीकार

१. (क) न्यायकुमुदचन्द्र पृ० १२४
(ख) स्याद्वादरत्नाकर, पृ० १७२
२. नचाकारविशिष्टज्ञानमेव तदव्यवस्थाहेतु, न्यायकुमुदचन्द्र, पृ० १२४
३. प्रमाणवार्तिक २/४३३
४. (क) तथाहि तद्व्यवस्थापकं प्रमाणं कि···समकालभावी··· स्याद्वादरत्नाकर, पृ० १७२
(ख) न्या० कु० च०, पृ० १२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया प्रमेय से पूर्वकाल में होने वाला ज्ञान प्रमेय के बिना उत्पन्न हो जाता है इसलिए वह सन्निकर्षजन्य नहीं होता है। अतः उससे बाह्य पदार्थों की व्यवस्था नहीं हो सकती है।

प्रमेय से उत्तरकाल में होने वाले ज्ञान को बाह्य पदार्थों का व्यवस्थापक मानने पर दो विकल्प होते हैं—(१) 'प्रमाण से पहले प्रमेय की विद्यमानता है'—इसे (पूर्वकाल वृत्ति को) किसी ने जाना है अथवा नहीं ? यदि "प्रमाण से पहले प्रमेय की विद्यमानता है" इसे नहीं जाना है तो वह ज्ञान का सद् विषय कैसे होगा ? क्योंकि यह नियम है कि जो सद् व्यवहार (सत्य) का विषय होता है वह किसी से जाना जाता है। जो किसी से जाना नहीं जाता है वह सद् व्यवहार (सत्य) का विषय नहीं होता हैं, जैसे आकाश का कमल किसी से नहीं जाना गया इसलिए वह ज्ञान का सद् विषय नहीं होता है। (२) प्रमाण से प्रमेय की पूर्वकाल वृत्ति है"—ऐसा भी किसी से नहीं जाना गया है। अतः प्रमेय से उत्तरकाल में उत्पन्न होने वाले ज्ञान को बाह्य पदार्थों का व्यवस्थापक नहीं माना जा सकता है।

अब यदि बाह्य पदार्थवादी यह मानें कि 'प्रमाण से पूर्व प्रमेय की विद्यमानता है और इसे किसी से जाना गया है, तो उन्हें बतलाना होगा कि वह किससे जाना गया है—स्वतः अथवा परतः ?[१] यदि स्वतः जाना गया है, तो बाह्यार्थ और ज्ञान में भेद नहीं होगा क्योंकि स्वतः प्रकाशमान होने से वह पूर्ववर्ती प्रमेय ज्ञान रूप हो जायगा। यह नियम है कि जो स्वतः प्रसिद्ध है वह ज्ञान से भिन्न नहीं है जैसे ज्ञान का स्वरूप। ज्ञान से पूर्व में होने वाला प्रमेय भी स्वतः प्रसिद्ध है। उस पूर्ववर्ती प्रमेय की जानकारी (प्रतिपत्ति) पर से नहीं हो सकती है क्योंकि प्रमाण से भिन्न दूसरा पदार्थ प्रमेय की व्यवस्था का कारण नहीं है। एक बात यह भी है कि प्रमेय की पूर्वकाल वृत्ति को उत्तरवर्ती प्रमाण प्रकाशित नहीं कर सकता, क्योंकि प्रमेयकाल में प्रमाण नहीं रहता है। जो जिस काल में नहीं है वह उसका प्रकाशक नहीं होता है जैसे अपनी उत्पत्ति से पूर्वकालवर्ती काल में नहीं होने वाले पदार्थ का दीपक प्रकाशक नहीं होता है। पूर्वकाल विशिष्ट प्रमेय का वर्तमान ज्ञान भी नहीं होता है, इसलिए वह उसका प्रकाशक नहीं हो सकता है।

अब यदि प्रमाण (ज्ञान) और प्रमेय (ज्ञेय) को समकालीन माना जाय तो जिस प्रकार गाय के बायें और दायें सींग एक साथ उत्पन्न होने पर वे ग्राह्य-ग्राहक रूप नहीं होते हैं, उसी प्रकार समान काल में उत्पन्न ज्ञान और ज्ञेय में भी ग्राह्य-ग्राहक भाव नहीं बनेगा।[२]

अब यदि बाह्य पदार्थों की सत्ता मानने वाले ऐसा कहें कि "बाह्य पदार्थों के बिना ज्ञान में नीलादि आकारों की प्रतीति नहीं हो सकती है इसलिए नीलादि आकारों का अनुरंजक बाह्य पदार्थ भी है" तो इसके उत्तर में चित्राद्वैतवादी कहते हैं कि उपर्युक्त कथन ठीक नहीं है क्योंकि स्वप्न अवस्था में बाह्य पदार्थों के अभाव में भी बाहरी पदार्थ की

१. अथ प्रतिपन्नम् क स्वतः परतो वा ?—न्यायकुमुदचन्द्र, पृ० २५

२. समकालत्वे तु ज्ञानज्ञेययोः ग्राह्यग्राहक भावाभावः।
(क) न्या० कु० च०, पृ० १२५
(ख) स्या० र०, पृ० १७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतीति होती है। स्वप्न अवस्था में होने वाले हाथी, घोड़ा आदि सम्बन्धी ज्ञान में बाह्य पदार्थ अनुरंजक नहीं होता है। अन्यथा स्वप्न ज्ञान और (प्रकाशित) जाग्रत ज्ञान में कोई भेद नहीं रहेगा। इसलिए सिद्ध है कि अर्थनिरपेक्ष ज्ञान ही अपनी सामग्री से अनेक आकार वाला होकर जाग्रत अवस्था में उसी प्रकार उत्पन्न होता है, जिस प्रकार स्वप्नदशा में उत्पन्न होता है।

अनेक आकार वाले ज्ञान में एकत्व का विरोध नहीं है :—यदि कोई चित्राद्वैतवादी से ऐसा पूछे कि अनेक आकारों के रूप में प्रतिभासित होने वाली बुद्धि में एकत्व किस प्रकार संभव है? तो इसके उत्तर में चित्राद्वैतवादी कहते हैं कि बुद्धि (ज्ञान) में प्रतिभासित होने वाले अनेक आकारों का पृथक्करण नहीं होने से उसमें एकत्व का विरोध नहीं है।[1] अनेक आकारों से प्रतिभासित होने वाली बुद्धि (ज्ञान) एक ही है अनेक रूप नहीं है, क्योंकि वह बाह्य आकारों (चित्रों) से विलक्षण होती है। बाह्य आकारों से वह विलक्षण इसलिए है कि बाह्य चित्र (नाना आकार) का पृथक्करण संभव है, किन्तु बुद्धि के नील-पीत आदि आकारों का पृथक्करण संभव नहीं है अर्थात् 'यह बुद्धि (ज्ञान) है और ये नील-पीत आदि आकार हैं' इस प्रकार पृथक्-पृथक् विभाजन बुद्धि में नहीं हो सकता है।[2]

चित्रपट आदि में चित्ररूपता की जो प्रतीति होती है उसमें ज्ञान धर्मता कैसे संभव है? इसके उत्तर में चित्राद्वैतवादी कहता है कि उसमें अर्थ धर्मता नहीं बन सकती है। इसके अलावा एक यह भी विकल्प होता है कि चित्रपट आदि एक अवयवी रूप निरंश वस्तु है अथवा उसके विपरीत सांश?[3]

चित्रपट आदि को निरंश वस्तु मानने में दोष :—चित्र-अद्वैतवादी कहते हैं कि यदि चित्रपट आदि को एक अवयवी रूप निरंश वस्तु माना जायेगा तो नील भाग के ग्रहण करने पर पीत आदि भागों का ग्रहण नहीं होगा, क्योंकि उन पीत आदि भागों का उससे भेद हो जायेगा यह एक नियम है कि जिसके ग्रहण करने पर जो गृहीत नहीं होता है वह उससे भिन्न है। जैसे मेरु पर्वत के ग्रहण करने पर विन्ध्याचल गृहीत नहीं होता, इसलिए वे भिन्न-भिन्न हैं। इसी प्रकार नील भाग के ग्रहण करने पर पीत आदि भागों का ग्रहण नहीं होता है। एक बात यह भी है कि विरुद्ध धर्मों की प्रतीति (अध्यास) होने के कारण अवयवी में भी एकरूपता नहीं बन सकती है। जिसमें विरुद्ध धर्मों का अध्यास होता है, उसमें एकरूपता नहीं होती है, जैसे जल, अग्नि आदि। अवयवी में भी ग्रहण-अग्रहण रूप विरुद्ध धर्मों का अध्यास होता है, इस लिए उसमें भी एकरूपता नहीं है। यदि नील भाग पीत आदि भाग रूप है तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि पीत आदि के अग्रहण में नील आदि का भी अग्रहण होगा। क्योंकि जो जिस रूप होता है उसके अग्रहण में वह भी ग्रहीत नहीं होता है। जैसे पीत आदि के अग्रहण में उसके स्वरूप का भी ग्रहण नहीं होता है। नील भी पीत आदि रूप है, इसलिए पीत आदि अग्रहण में नील आदि का भी ग्रहण नहीं होगा।

---

१. प्रमाणवार्तिक, २/२२० और भी देखें न्यायकुमुदचन्द्र पृ० १२५-१२६; स्याद्वादरत्नाकर पृ० १७३

२. (क) वही
(ख) प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ० ९५

३. न्या० कु० च०, पृ० १२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रपट आदि को सांश एक वस्तु मानने में दोष :—यदि चित्रपट आदि को निरंश एक वस्तु न मानकर उससे विपरीत सांश वस्तु माना जाय भी तो उसमें, विभिन्न आश्रयों में रहने वाले नील-पीत आदि की तरह, स्वयं चित्रता का अभाव सिद्ध हो जायेगा। इसलिए चित्रता अर्थ का धर्म नहीं है, किन्तु ज्ञान का धर्म है।[1] अपने कारण-कलाप से उत्पन्न विज्ञान (बुद्धि) अनेक आकार युक्त (खचित) ही उत्पन्न होता है और अनुभव में आता है। इसलिए चित्राकार ज्ञान ही एक तत्त्व है। इस प्रकार चित्राद्वैत सिद्ध होता है।[2]

चित्र-अद्वैतवादी सांख्य दार्शनिकों के इस मत का निराकरण करते हैं कि सुखादि में ज्ञान स्वरूपता का अभाव होने से चित्र प्रतिभास वाला ज्ञान ही एकमात्र तत्त्व कैसे हो सकता है ? अतः चित्राद्वैतवाद सिद्ध नहीं होता है। चित्र-अद्वैतवादी कहते हैं कि सुखादि भी ज्ञान के अभिन्न हेतुओं से उत्पन्न होने के कारण ज्ञान रूप ही है। अतः सुखादि ज्ञानात्मक हैं, ज्ञान के अभिन्न हेतुओं से उत्पन्न होने के कारण ज्ञानान्तर की तरह। इसी बात को प्रमाणवार्तिक में कहा भी है—"तद् रूप पदार्थ तद्रूप हेतुओं से उत्पन्न होते हैं और अतद्रूप पदार्थ अतद्रूप हेतुओं से उत्पन्न होते हैं।[3] अतः विज्ञान (बुद्धि) से अभिन्न हेतुओं से उत्पन्न होने के कारण सुखादि अज्ञान रूप कैसे हो सकते हैं ?

चित्राद्वैतवाद की मीमांसा :—न्याय-वैशेषिक आदि भारतीय दार्शनिकों की तरह जैन दार्शनिक भट्ट अकलंकदेव, आ० विद्यानन्द, वादिराज, प्रभाचन्द्र, वादिदेव सूरि, यशोविजय आदि ने चित्राद्वैतवाद का तर्कपूर्ण निराकरण किया है।[4]

जैन दार्शनिक सर्वप्रथम चित्राद्वैतवादियों से कहते हैं कि बाह्य पदार्थ की सत्ता साकार एवं निराकार ज्ञान से सिद्ध होती है। जैन दर्शन में केवल साकार ज्ञान को ही प्रमाण नहीं माना गया है।[5] निराकार ज्ञान भी योग्यता के द्वारा प्रत्येक कार्य की व्यवस्था में हेतु होता है। इसलिए चित्राद्वैतवाद का यह कथन असत्य है कि निराकार ज्ञान सर्वत्र समान होने से प्रत्येक कर्म या पदार्थ की व्यवस्था में हेतु नहीं हो सकता।[6]

---

१. वही।
२. (क) वही
(ख) एकं चित्रं बहिरिह यतो वस्तुभूतं न किञ्चिन्मानारूढं कथमपि घटाकोटिमायाति तस्मात्।
चित्रामिकां धियमनुभवेनैव संवेद्यमानां मुक्त्वा मिथ्याभिमतिमधुना किं न भो स्वीकुरुध्वे।
चित्राकारामेकां बुद्धिं बाह्यार्थमन्तरेणापि इत्थं मे प्रतिपन्नाः सम्प्रति तेषामियं शिक्षा।
स्याद्वादरत्नाकर, १|१६, कारिका १६५-१६६ पृ० १७४
३. न्यायकुमुदचन्द्र पृ० १२६ पर उद्धृत।
४. आ० विद्यानंद तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक १/१ पृ० ३६-३८;
प्रभाचन्द : न्यायकुमुदचन्द्र १/५ पृ० १२६-१३०।
प्रभाचन्द : प्रमेयकमलमार्तण्ड, १/५ पृ० ९५-९८।
वादिदेव सूरि : स्याद्वादरत्नाकर, १/१६ पृ० १७४-१७९।
वादिराज सूरि : न्यायविनिश्चयविवरण प्रथम प्रत्यक्ष प्रस्ताव १/९६, पृ० ३९३-३९४।
५. देखें—कैलाशचन्द्र शास्त्री जैन न्याय, पृ० ८८
६. (क) न्यायकुमुदचन्द्र, १/५, पृ० १२६
(ख) न्यायविनिश्चयटीका १५/१२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बात यह भी है कि जो प्रकाशक होता है उसमें पूर्वभाव, उत्तरभाव और सहभाव का नियम नहीं होता है। उदाहरणार्थ कहीं पर पूर्व में विद्यमान अपने पश्चात् होने वाले का प्रकाशक होता है। जैसे सूर्य बाद में उत्पन्न होने वाले पदार्थों का प्रकाशक होता है। कहीं पर पूर्व में विद्यमान पदार्थों का उनके पश्चात् होने वाला प्रकाशक होता है जैसे - मकान के अन्दर स्थित घट आदि पदार्थों का बाद में होने वाला दीपक प्रकाशक होता है। कहीं पर सहभावी भी पदार्थों का प्रकाशक होता है। जैसे कृतकत्वादि अनित्य आदि के प्रकाशक होते हैं। इसलिए प्रमाण पूर्वापर सहभाव नियम निरपेक्ष होकर वस्तु को प्रकाशित करता है क्योंकि वह सूर्य की तरह प्रकाशक है। अतः चित्राद्वैतवादियों का यह प्रश्न ठीक नहीं है कि प्रमेय से पूर्वकाल में होने वाला ज्ञान पूर्वकालवर्ती बाह्य अर्थ का प्रकाशक है अथवा उत्तरकालवर्ती अथवा सहभावी।

अशक्य पृथक्करणत्व क्या है :—आचार्य विद्यानन्द, वादिराज, प्रभाचन्द्र आदि चित्र-अद्वैतवादियों से प्रश्न करते हैं कि आपने जो यह कहा है कि बुद्धि (ज्ञान) के आकारों का पृथक्करण करना संभव नहीं है तो आप बतलायें कि ऐसा क्यों है? अर्थात् अशक्य पृथक्करण क्या है? क्या वे नीलादि आकार ज्ञान से अभिन्न हैं? अथवा ज्ञान के साथ उत्पन्न नील आदि आकारों का ज्ञानान्तर (दूसरे ज्ञान) को छोड़कर उसी ज्ञान से अनुभव होना है? अथवा भेदपूर्वक (भेद करके) विवेचन के अभावमात्र का होना ही अशक्य पृथक्करण है![1] उपर्युक्त तीन विकल्पों में से प्रथम विकल्प— नील आदि आकार ज्ञान से अभिन्न होने के कारण उन्हें ज्ञान से अलग करना असम्भव है, ऐसा मानने पर हेतु भी साध्य के समान असिद्ध है। क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि नील आदि ज्ञान से अभिन्न हैं, क्योंकि वे उससे अभिन्न हैं। यहाँ पर साध्य 'ज्ञान से अभिन्नता' को ही हेतु बनाया गया है। अतः यह असिद्ध हेतु साध्य को सिद्ध नहीं कर सकता है। इसलिए इससे अशक्य पृथक्करण सिद्ध नहीं होता है।

"सहोत्पन्न नील आदि ज्ञान का ज्ञानान्तर को छोड़कर उसी ज्ञान से अनुभव होना अशक्य पृथक्करणत्व है' ऐसा माना जाय तो अनेकान्तिक दोष होगा। जो हेतु पक्ष की तरह विपक्ष में रहता है वह अनैकान्तिक हेत्वाभास कहलाता है।[2] चित्र-अद्वैतवादियों द्वारा दिया गया अशक्य विवेचनत्व हेतु इसलिए अनैकांतिक है कि सम्पूर्ण सुगत के ज्ञान के साथ उत्पन्न हुआ है और ज्ञानान्तर (दूसरे ज्ञान) का परिहार करके उसी सुगत के ज्ञान से ग्राह्य भी है। किन्तु उस सम्पूर्ण संसार के ज्ञान के साथ सुगत के ज्ञान का एकत्व नहीं है। अतः जो बुद्धि में प्रतिभासित होता है वह उससे अभिन्न है। यह कथन अनैकांतिक दोष से दूषित है।

दूसरी बात यह है कि यदि सुगत के साथ सम्पूर्ण संसार का एकत्व (एकपना) मानने पर सुगत (बुद्ध) भी संसारी रूप हो जायेगा एवं सम्पूर्ण संसारी प्राणियों में सुगतपना (सुगतत्व) हो जायेगा। इस प्रकार सुगत को संसारी रूप में और असंसारी रूप में मानने पर ब्रह्मवाद मानना पड़ेगा।

चित्राद्वैतवादी यह नहीं कह सकता है कि सुगत के साथ कोई उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए सुगत के संसारी होने या संसारी प्राणियों का सुगत रूप होने का दोष नहीं आ सकता

१. (क) न्यायकुमुदचन्द्र, १/५, पृ० १२७
(ख) प्रमेयकमलमार्तण्ड, पृ० ९५-९६
२. विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः। अनन्तवीर्यः प्रमेयरत्नमाला, ६/३०

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

है। क्योंकि प्रमाणवार्तिक में कहा गया है कि "जिन पर महती कृपा होती है, वेसुगत के अधीन होते हैं।" इस कथन से स्पष्ट है कि सुगत के सत्ताकाल में सर्वत्र ऐसे प्राणी वर्तमान थे। अन्यथा सुगत की कृपा किस पर होती। इसी प्रकार विनयी शिष्य आदि प्राणियों के अभाव में मोक्षमार्ग का उपदेश देना भी निर्थरक होगा। इसके अलावा एक बात यह भी है कि सुगत का उपदेश सुनकर कोई सुगत की तरह सुगति (निर्वाण) भी प्राप्त नहीं कर सकेगा, क्योंकि आपके सिद्धान्तानुसार सुगत के समय अन्य किसी की उत्पत्ति नहीं हो सकती है और वह सुगत अंत रहित है।

अब यदि अशक्य पृथक्करण को ज्ञानांतरज्ञान न मान करके सुगत के ज्ञान से उनका अनुभव में आना माना जाय तो यह कथन भी असिद्ध होजायेगा क्योंकि नील-पीत आदि पदार्थ अन्य ज्ञानों से भी जाने जाते हैं (अनुभव में आते हैं)। यदि नील आदि पदार्थों को ज्ञान रूप माना जाय तो अन्योन्याश्रय नामक दोष आता है। क्योंकि नील आदि पदार्थों में ज्ञानरूपता सिद्ध होने पर ही नील आदि पदार्थों में अन्य ज्ञान का परिहार करके उसी ज्ञान से उनका अनुभव में आना सिद्ध होगा और इस प्रकार अनुभव की सिद्धि होने पर पदार्थों में ज्ञानरूपता की सिद्धि होगी।

अब यदि यह तीसरा विकल्प स्वीकार किया जाय कि 'भेद नहीं कर सकना अशक्य ही पृथकरण है' तो यह भी असिद्ध है क्योंकि नील आदि पदार्थ बाहर स्थित हैं और उनका ज्ञान अंतरंग में स्थित हैं, इसलिए उनमें पृथक्करण की सिद्धि होती है। इस प्रकार विवेच्यमान एवं पृथक्कीयमान इन दोनों में विवेचन का अभाव माननाठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने से समस्त पदार्थों के अपह्नव अर्थात् अभाव के निश्चय से सकल शून्यता सिद्ध हो जायेगी, जो चित्राद्वैतवादियों को मान्य नहीं है।

चित्रज्ञान की तरह बाह्य पदार्थ भी एक रूप है—एक बात यह भी है कि अनेक से व्याप्त अन्तस्तत्त्व ज्ञान का पृथक्करण न कर सकने से यदि एकत्व आकारों का अविरोधी मानते हो तो अवयवी आदि बाहर के तत्त्वों को भी एकत्व का अविरोधी मानना पड़ेगा, क्योंकि दोनों में समानता है। बुद्धि के द्वारा उसके स्वरूप का विवेचन तो अन्यत्र भी समान है। चित्र ज्ञान में भी नील आदि आकारों का अन्योन्य देश का परिहार करके एक देश में स्थित होना समान है। नील आदि आकारों का एक ही देश मानने पर एक आकार में ही अन्य समस्त आकारों का प्रवेश हो जाने से उनमें विलक्षणता (भेद) का अभाव हो जायगा और ऐसा होने पर चित्रता (नाना आकार) का विरोध हो जायगा। यह एक नियम है कि जिसका एक देश होता है अर्थात् जो एक ही आधार में रहते हैं, उनके आकर में विलक्षणता नहीं होती है। जैसे नीलाकार चित्र ज्ञान में नील आदि आकार भी एक देश वाले हैं, इसलिये उनमें भी विलक्षणता नहीं है। उसी प्रकार जहाँ आकारों में अविभिन्नता होती है वहाँ चित्ररूपता नहीं होती है, जैसे एक नील ज्ञान मेंस्वीकृत (अभिमत) नील आदि आकारों में भी आकारों की अविचित्रता है।[1]

१. न्याय कुमुदचन्द्र, १/५/ पृ० १२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकार चित्रज्ञान से सम्बद्ध है या असम्बद्ध ?—आ० प्रभाचन्द्र एवं वादिदेवसूरि चित्रा-द्वैतवादियों से प्रश्न करते हैं कि नील आदि अनेक आकार चित्रज्ञान में सम्बद्ध होकर चित्रज्ञान के कथन के हेतु होते हैं अथवा उसमें असम्बद्ध होकर ही कथन के हेतु (कारण) हैं ? असम्बद्ध होकर तो वे आकार चित्रज्ञान के कथन के कारण नहीं हो सकते हैं, नहीं तो अतिप्रसंग का दोष हो जायेगा। क्योंकि कोई किसी से असम्बद्ध होकर भी किसी के कथन हेतु हो जायगा।

अब यदि सम्बद्ध माना जाय तो बतलाना होगा कि किस सम्बन्ध से वे आकार चित्र-ज्ञान में सम्बद्ध होकर चित्रज्ञान के कथन में कारण हैं ? तादाम्य सम्बद्ध से वे सम्बद्ध है अथवा तदुत्पत्ति सम्बन्ध से ? उन आकारों का चित्रज्ञान से तदुत्पत्ति सम्बन्ध से सम्बन्ध नहीं माना जा सकता है, क्योंकि समकालीन पदार्थों में ऐसी सम्बद्धता असम्भव है। तादात्म्य सम्बन्ध से भी सम्बद्धता नहीं बनती है क्योंकि अनेक आकारों से अभिन्न होने के कारण ज्ञान में एक-रूपता के अभाव का प्रसंग आयेगा। जो अनेक आकारों से अभिन्न स्वरूप है वह वैसे ही अनेक है, जैसे अनेक आकारों का स्वरूप। चित्रज्ञान भी अनेक आकारों से अभिन्न है इसलिये उन आकारों में तादात्म्य सम्बद्धता नहीं हो सकती है। एक बात यह भी है कि अनेक आकारों में एक ज्ञानस्वरूप से अभिन्न (अव्यतिरेक) होने के कारण अनेकत्व नहीं बन सकता है, क्योंकि जो एक से अव्यतिरेक (अभिन्न) है वह अनेक नहीं है जैसे उसी ज्ञान का स्वरूप। अनेक रूप से माने गये नील आदि आकार भी एक ज्ञानस्वरूप से अभिन्न है, इसलिये वे अनेक नहीं है।[1]

चित्रता अर्थ का धर्म है—चित्र-अद्वैतवादियों का यह कथन भी दोषपूर्ण है कि ग्रहण-अग्रहण रूप विरुद्ध धर्मों का अध्यास होने से चित्रता अर्थ का धर्म नहीं है। प्रत्यक्ष से विरोध होने पर अनुमान प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं होती है। अबाधित प्रत्यक्ष ज्ञान में चित्र के आकार बाहरी पदार्थों के धर्मरूप से प्रतिभासित होता है। अतः उसमें ज्ञानधर्मता मानना ठीक नहीं है। जो जिस धर्म से प्रतीत होता है वह उससे अन्य धर्म वाला नहीं है जैसे अग्नि के धर्म रूप से प्रतीत होने वाली उष्णता जल का धर्म नहीं है। चित्रता भी बाह्यार्थ के धर्मरूप प्रतीत होती है इसलिये वह भी ज्ञानधर्मरूप नहीं है। यदि कोई कहे कि चित्रता को बाह्य पदार्थ का धर्म मानने पर ग्रहण और अग्रहण की उत्पत्ति कैसे बनेगी ? इसका उत्तर यह है कि चित्र के ज्ञान (प्रतिपत्ति) में अनेक वर्णों की प्रतिपत्ति कारण होती है। नीलभाग का ज्ञान होने पर भी पीत आदि भाग से अप्रतिपत्ति में चित्रता का ज्ञान न होना सिद्ध ही है।

चित्रता को ज्ञान का धर्म मानने पर भी वह विरुद्ध हेतु के समान ही है। क्योंकि यहाँ प्रश्न होता है कि एक ज्ञान अनेक आकार वाला है अथवा उससे विपरीत ?[2] एक चित्रज्ञान

---

१. किञ्च एते आकाराः चित्रज्ञाने सम्बद्धाः सन्ताक्तद्व्यपदेशहेतव असम्बद्धा वा,
(क) न्या० कु० च० पृ० १२८ (ख) स्या० रत्ना०, १/१६, पृ० १७७, वही।

२. तथाहि ज्ञानमेकमनेकारं तद्विपरीतं वा ? (क) न्या० कु० च० पृ० १२८
(ख) स्याद्वाद रत्नाकर, पृ० १७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को अनेक आकार वाला मानना ठीक नहीं है, क्योंकि परस्पर में विरुद्ध अथवा भिन्न (व्यावृत्त) अनेक आकारों का एक अनंश ज्ञान में रहना (वृत्ति) संभव नहीं है। जिनकी परस्पर में भिन्नता होती है, उनकी अनंश एक वस्तु में वृत्ति (अस्तित्व) या सत्ता नहीं होती है। जैसे गाय, घोड़े आदि परस्पर में भिन्न हैं, इसलिये उनकी एक वस्तु में सत्ता नहीं होती है। इसी प्रकार नील-पीत आदि आकारों की भी परस्पर विरुद्धता या भिन्नता है इसलिये वे भी एक ज्ञान में नहीं रह सकते हैं।

प्रभाचन्द्र एवं वादिदेवसूरि यह भी कहते हैं कि एक अनंश ज्ञान का परस्पर विरुद्ध आकारों के साथ तादात्म्य (अभेद सम्बन्ध) भी ठीक नहीं है, क्योंकि एक अनंश का परस्पर विरुद्ध आकारों के साथ अभेद सम्बन्ध मानने पर ज्ञान में भी भेद का प्रसंग प्राप्त होगा। उदाहरणार्थ – जो एक और अनंश है उसका परस्पर विरुद्ध आकारों के साथ तादात्म्य (अभिन्न) सम्बन्ध नहीं है जैसे – उत्पन्न क्षण का उत्पत्ति और अनुत्पत्ति से अथवा सत्त्व और विनाश से तादात्म्य सम्बन्ध नहीं होता है। चित्राद्वैतवादियों ने चित्रज्ञान को एक और अनंश माना है। अतः आकारों का ज्ञान के साथ तादाम्य सम्बन्ध मानने पर उनमें भेद मानना भी संभव नहीं हो सकेगा, तब चित्रता कैसे बनेगी।[१]

यदि चित्र-अद्वैतवादी यह माने कि नील–पीत आदि आकारों की तरह वह ज्ञान भी अनेक है, तो प्रश्न होता है कि वह ज्ञान कथंचित् अनेक हैं। अथवा सर्वथा?[२] चित्रज्ञान को सर्वथा अनेक मानने पर नील आदि आकारों के ज्ञानों में परस्पर में अत्यन्त भेद होने के कारण चित्रता का ज्ञान स्वप्न में भी नहीं होगा। क्योंकि यह नियम है कि जिनमें परस्पर में अत्यन्त भेद होता है, उनमें चित्रता का बोध नहीं होता है; जैसे सन्तानान्तर के विभिन्न ज्ञानों में, आकारों की तरह उनके ज्ञानों में भी परस्पर अत्यन्त भेद है, इसलिए चित्रता संभव नहीं है।

कथंचित् अभेद मानने पर तो ज्ञान की तरह बाह्य अर्थ में भी चित्रस्वभावता मान लेना चाहिए। क्योंकि उसमें भी प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से तरह-तरह के आकारों से तादात्म्य का अनुभव होता है। दुराग्रह के अभिनिवेश से क्या लाभ होगा? बाह्य चित्रता और अन्तःकरण की चित्रता में आक्षेप और समाधान समान है। प्रमेयकमलमार्तण्ड में कहा भी है कि जिस तरह एक ज्ञान में अक्रम से नील, पीत आदि अनेक आकार व्याप्त होकर रहते हैं, उसी प्रकार क्रम से सुख दुःख आदि अनेक आकार भी उसमें व्याप्त होकर रहते हैं, ऐसा मानना चाहिए।"[२] अतः नील आदि अनेक अर्थों का व्यवस्थापक प्रमाता (आत्मा) है और वह कथंचित् अक्षणिक है ऐसा सिद्ध होता है। अतः प्रमाता और प्रमेय ऐसे दो तत्त्व सिद्ध हो जाने से चित्र-अद्वैत ही तत्त्व है ऐसा सिद्ध नहीं होता।[३]

---

१. तथाहि ज्ञानमेकमनेकारं तद्विपरीतं या ? (क) न्यायकुमुदचन्द्र पृ० १२८
   (ख) स्याद्वादरत्नाकर, पृ० १७७

२. (क) न्यायकुमुदचन्द्र पृ० १२९ (ख) स्याद्वादरत्नाकर, पृ० १८७

३. क्रमेणाप्यनेकसुखद्याकार…दन्तोजलाञ्जलिः। १/५, पृ० ९६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य विद्यानन्द[1] ने भी कहा है कि जिस प्रकार चित्रज्ञान में अनेक आकार होने पर भी ज्ञान की अपेक्षा से वह एक रूप है। इसी प्रकार ज्ञान-दर्शन, सुख आदि की अपेक्षा से आत्मा अनेक रूप है और आत्म द्रव्य की अपेक्षा एक रूप है। यदि सुख रूप आत्मा से ज्ञान रूप आत्मा को भिन्न मान कर चित्र-अद्वैतवादी आत्मा को एक नहीं मानेगा तो नील रूप आकार से पीत रूप आकार भिन्न होने के कारण चित्रज्ञान भी एक रूप सिद्ध नहीं होगा। एक बात यह भी है कि आत्मा को एक रूप मात्र मानने पर चित्रज्ञान को भी एक ही रूप मानना पड़ेगा। ऐसा मानने पर उसे चित्रज्ञान कहना असंगत हो जायेगा। धर्मकीर्ति ने प्रमाणवार्तिक में भी चित्र-ज्ञान में अनेक आकारों का निराकरण करते हुए कहा है कि "क्या एक ज्ञान में अनेक आकार हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते हैं, किन्तु ज्ञान को अनेक आकार अच्छे लगते हैं तो इस विषय में हम क्या कर सकते हैं?" दूसरे शब्दों में ज्ञान में चित्रता नहीं है फिर भी अज्ञानता के कारण ज्ञान में चित्रता मानने वालों का कोई क्या कर सकता है? इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि चित्र ज्ञान में एकाकारता भी सिद्ध नहीं होती है। अतः चित्रज्ञान में कथंचित् एकाकारता और कथंथित् अनेकाकारता सिद्ध होती है। इसीप्रकार आत्मा आदि तत्त्व भी कथंचित् एक रूप और अनेक रूप हैं।[2]

सुख आदि ज्ञान रूप नहीं है :—चित्र-अद्वैतवादी मानते हैं कि सुख आदि ज्ञान रूप हैं किन्तु उनका यह कथन उचित नहीं है।[3] क्योंकि सुख आदि की उत्पत्ति एकान्त रूप से (सर्वथा) उसी सामग्री से नहीं होती, जिन से ज्ञान की उत्पत्ति होती है। सुख की उत्पत्ति सातावेदनीय नामक कर्म के उदय से होती हैं और ज्ञान की उत्पत्ति ज्ञानावरण नामक कर्म के क्षयोपशम से होती हैं अतः सुख और ज्ञान दोनों के कारण भिन्न-भिन्न है। इस प्रकार सुख आदि की तरह ज्ञान भी आत्मा रूप है। अतः ज्ञान और सुख आदि में कथंचित् भिन्नता और कथंचित् अभिन्नता होने पर भी यदि उन दोनों में एकता मानी जायगी तो रूप, आलोक आदि को भी ज्ञान रूप मानना पड़ेगा। इसलिए ऐसा मानना चाहिए कि ज्ञान और सुख आदि सर्वथा एक नहीं हैं। आत्मा की अपेक्षा वे एक हैं और अपने कार्य स्वरूप आदि की अपेक्षा अनेक भी हैं।

प्रभाचन्द्र, वादिदेवसूरि आदि तर्कशास्त्री कहते भी हैं कि–चित्र-अद्वैतवादियों ने सुख आदि को ज्ञान स्वरूप मानने में जो यह हेतु दिया था, कि सुख आदि ज्ञान उत्पन्न करने वाले अभिन्न हेतुओं से उत्पन्न होते हैं, उसके विषय में यह प्रश्न होता है कि सुख आदि में ज्ञान के अभिन्न हेतु से उत्पन्नत्व सर्वथा स्वीकार है अथवा कथंचित्? यदि हेतु को सर्वथा माना जाय तो वह असिद्धदोष से दूषित हो जायेगा। क्योंकि सुख आदि साता-असाता वेदनीय के उदय से एवं माला, वनिता आदि निमित्तों से होते हैं। इसी प्रकार ज्ञान ज्ञानावरण के क्षयोपशम आदि से होता है। दूसरी बात यह है कि यदि सुख आदि का स्वरूप ज्ञान के स्वरूप से भिन्न है, तो अभिन्न हेतु से उत्पन्न होने के कारण यह हेतु असिद्ध सिद्ध होता है। जिनका भिन्न स्वरूप होता है,

---

१. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक १/१ द्वारिका १५९-१६१ पृ० ३५-३६

२. वही।

३. (क) विद्यानंदः अष्टसहस्त्री, पृ० १२८ (ख) न्यायकुमुदचन्द्र, १/५, पृ० १२९ (ग) स्याद्वादरत्नाकर १/१६ पृ० १७८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे सर्वथा अभिन्न हेतु से उत्पन्न नहीं होते हैं, जैसे जल, अग्नि आदि। ज्ञान और सुख आदि में भी विभिन्न स्वरूप पाया जाता है। सुख आनन्द आदि रूप होता है और ज्ञान प्रमेय के अनुभव स्वरूप होता है। इसलिए वे भी एक अभिन्न कारण से उत्पन्न नहीं हैं। अतः विभिन्न स्वरूप वाले पदार्थों का अभिन्न उपादान कारण मानने पर सभी चीजें सभी की उपादान कारण हो जायेंगी। अतः सिद्ध है कि ज्ञान सुख आदि रूप नहीं है।

अब यदि ज्ञान अभिन्न हेतु से उत्पन्न होने के कारण इस हेतु को कथंचित् माना जाय तो रूप, आलोक आदि के द्वारा हेतु विपक्ष में चले जाने से अनैकान्तिक नामक हेत्वाभास से दूषित हो जाता है। क्योंकि जिस प्रकार रूप आलोक आदि से ज्ञान की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार रूप-क्षणान्तर एवं आलोक-क्षणान्तर की भी उत्पत्ति होती है। संक्षेप में रूप-ज्ञान की तरह रूप को भी उत्पन्न करता है। अतः सुख आदि ज्ञान रूप नहीं हैं यह सिद्ध हुआ।

एक बात यह भी है कि आपने सुख आदि में 'ज्ञान से अभिन्न हेतु से उत्पन्न होने के कारण' ऐसा जो हेतु माना है वह किस अपेक्षा से कहा है उपादान कारण की अपेक्षा से अथवा सहकारी कारण की अपेक्षा से? उपादान कारण की अपेक्षा मानने पर यह भी विचारणीय है कि इनका उपादान क्या है, आत्म द्रव्य अथवा ज्ञानक्षण? आत्म द्रव्य को बौद्धों ने माना ही नहीं है इसलिए वह उपादान हो नहीं सकता है। आत्म द्रव्य मानने पर प्रश्न होता है कि सुखादि में उपादान की अपेक्षा से अभेद सिद्ध करते हैं अथवा स्वरूप की अपेक्षा से? यदि चित्र-अद्वैतवादी 'सुखादि में उपादान की अपेक्षा अभेद सिद्ध करते हैं'—इस विकल्प को स्वीकार करते हैं तो इसमें सिद्ध-साधन नामक दोष आता है, क्योंकि जैनदर्शन ने भी चेतन द्रव्य की अपेक्षा सुख आदि में अभेद माना है और सुखज्ञान आदि प्रतिनियत (पूर्वनिर्धारित) पर्याय की अपेक्षा से इनमें परस्पर भेद भी माना है। अब यदि यह माना जाय कि 'स्वरूप की अपेक्षा सुख आदि में अभेद है' तो घट, घटी, शराव आदि के समान अनैकान्तिक दोष होता है। क्योंकि अभिन्न उपादान वाले घट, घटी आदि में स्वरूप से अभेद नहीं है।[1]

अब यदि ज्ञानक्षण को उपादान मानकर 'विज्ञान से अभिन्न हेतुजत्व' सिद्ध करना चाहते हैं तो यह भी असिद्ध है। क्योंकि आत्मद्रव्य ही सुख आदि में उपादान होता है। पर्यायों का दूसरी पर्यायों की उत्पत्ति में उपादानत्व कभी भी नहीं देखा गया है। अन्तरंग अथवा बाह्य द्रव्य में ही उपादानत्व बनता है। कहा भी है "जो द्रव्य पूर्व और उत्तर पर्यायों में तीनों कालों में वर्तमान रहता है वही द्रव्य माना गया है।" आत्मा पूर्वोत्तर पर्यायों और तीनों कालों में रहने के कारण द्रव्य है।

अब यदि माना जाय कि 'सुखादि में ज्ञान-अभिन्न हेतुजत्व' सहकारी कारण की अपेक्षा से है तो यह भी कथन मात्र है। यहाँ चक्षु आदि के द्वारा अनैकान्तिक दोष का प्रतिपादन होता है। यदि सुख आदि ज्ञान से सर्वथा अभिन्न है तो ज्ञान की तरह सुख आदि को भी अर्थ का प्रकाशक होना चाहिए, लेकिन ऐसा होता नहीं है। ज्ञान तो स्व-पर प्रकाशक होता है और सुख आदि अपने स्व-प्रकाश में ही नियत (निश्चित) है, ऐसा सभी को अनुभव होता है। अतः विरुद्ध

---

१. न्यायकुमुदचन्द्र, १/५, पृ० १३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मों का अध्यास होने से इनमें अभेद कैसे हो सकता है ? जहाँ विरुद्ध धर्मों का अध्यास है वहाँ अभेद नहीं है। जैसे जल, अग्नि। ज्ञान सुख आदि में भी विरुद्ध धर्मों का अध्यास है, इसलिए उनमें भी अभेद नहीं है। इस प्रकार सुख आदि में ज्ञान रूपत्व सिद्ध नहीं होता है।

इस प्रकार चित्राद्वैतवाद पर विचार करने पर वह तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। इसलिए अन्य अद्वैतवादों की तरह 'चित्राद्वैतवाद' भी ठीक नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org